पञ्चम अध्याय

कला–पक्ष

साहित्यदर्पणानुसार काव्य–गुण–दोष–लक्षण

साहित्य दर्पण के प्रथम परिच्छेद के तृतीय श्लोक में विश्वनाथ कहते हैं कि

वाक्यं रसात्मकं काव्यं, दोषास्तस्यापकर्षकाः।

उत्कर्षहेतवः प्रोक्ताः, गुणालंकाररीतयः।।[1]

रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। साररूप होने से सबसे प्रधान होने के कारण रस ही जिसका जीवनभूत (आत्मा) है, वह वाक्य काव्य कहलाता है। यहाँ रस शब्द का अर्थ शृङ्गारादि रस विवक्षित नहीं है; अतः "रस्यते अर्थात् आस्वाद्यते इति रसः" इस योगार्थ के अनुसार जो आस्वादित हो उस को रस कहते हैं। उससे रस, रसाभास, भाव और भावाभास आदि का भी ग्रहण होता है।

दोषों का स्वरूप बताते हुए विश्वनाथ कहते हैं–

"काव्य के अपकर्षकों को दोष कहते है।" जैसे काणत्व, खञ्जत्वादिक दोष शरीर को दूषित करते हुए उसके द्वारा उसमें रहने वाले आत्मा की हीनता सूचित करते हैं; इसी प्रकार काव्य के शरीर भूत शब्द में श्रुतिदुष्टत्वादि और अर्थ में अपुष्टार्थत्वादिक दोष भी पहले शब्द और अर्थ को दूषित करके उसके द्वारा काव्य के आत्मभूत रस का अपकर्ष (हीनता) सूचित करते हैं। इसी प्रकार जैसे मूर्खत्वादि साक्षात् ही (किसी के द्वारा नहीं) आत्मा का अपकर्ष सूचित करते हैं, वैसे ही निर्वेद व्रीडादिक व्यभिचारि भावों का स्वशब्दवाच्यत्व (अपने वाचक पदों से कह देना) प्रभृति अनेक दोष काव्य के आत्मा (रस) का साक्षात् अपकर्ष करते हैं। साक्षात् या परम्परा से काव्य के आत्मभूत रस के अपकर्षक ये ही दोष काव्यदोष कहलाते हैं क्योंकि इनसे काव्य का अपकर्ष बोधित होता है।

---

[1] साहित्य दर्पण– 1/3

विश्वनाथ गुणों का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि – गुण, अलंकार और रीतियाँ काव्य की उत्कृष्टता के कारण होते हैं। जैसे– शौर्यादि गुण, कटक कुण्डलादि अलंकार और अंगरचनादिक रीतियाँ मनुष्य के शरीर का उत्कर्ष सूचित करते हुए उसके आत्मा का उत्कर्ष सूचित करते हैं; इसी प्रकार काव्य में भी माधुर्यादि गुण, उपमादिक अलंकार और वैदर्भी आदिक रीतियाँ शरीर स्थानीय शब्द और अर्थ का सूचन करते हुए आत्म स्थानीय (रस का उत्कर्ष सूचित करते हैं; और जैसे शौर्यादिक मनुष्य) के उत्कर्षक कहे जाते हैं, इसी प्रकार माधुर्यादिक काव्य के उत्कर्षक माने जाते हैं।

साहित्यदर्पण के सप्तम परिच्छेद में दोषों का सामान्य लक्षण इस प्रकार दिया गया है–

''रसापकर्षका दोषा''।।[1]

रस के अपकर्ष अर्थात् रस की हीनता या विच्छेद के जो कारण हैं, वे दोष कहलाते हैं।

दूषयति काव्यमिति दोषः (जो काव्य को दूषित करे वह दोष है) इस व्युत्पत्ति के अनुसार श्रुतिकटुत्वादि को दोष कहते हैं।) रस का अपकर्ष तीन प्रकार से होता है– एक तो रस की प्रतीति अर्थात् रसास्वाद के रुक जाने से, दूसरे रस की उत्कृष्टता की विघातक किसी वस्तु के बीच में पड़ जाने से, तीसरे रसास्वाद में विलम्ब करने वाले कारणों के उपस्थित हो जाने से। इनमें से कोई लक्षण जिसमे मिले, वही दोष कहलाता है। पद, पदांश, वाक्य अर्थ और रस में रहने के कारण दोष पाँच प्रकार के माने गए हैं। दुःश्रवत्व (श्रुतिकटुत्व), अश्लीलता, अनुचितार्थत्व, अप्रयुक्तत्व, ग्राम्यत्व, अप्रतीतत्व, सन्दिग्धत्व, नेयार्थत्व, निहतार्थत्व, अवाचकत्व, क्लिष्टत्व, विरुद्धमतिकारित्व और पदगत तथा वाक्यगत अविमृष्ट विधेयांशत्व– ये सब दोष हैं। इनमें से कुछ दोष जैसे

---

[1] *रसापकर्षका दोषाः, ते पुनः पञ्चधामताः।*
पदे तंदशे वाक्येऽर्थे, संभवन्ति रसेऽपियत्।।1।।
दुःश्रवत्रिविधाऽश्लीलाऽनुचितार्थाऽप्रयुक्तताः।
ग्राम्याऽप्रतीत सन्दिग्ध नेयार्थ निहतार्थता।।2।।
अविमृष्ट विधेयांश भावश्च पदवाक्ययोः।।3।।
दोषाः केचिद्भवन्त्येषु पदांशेऽपि, पदे पदे।
निरर्थकाऽसमर्थत्वेच्युतसंस्कारता तथा।।4।। साहित्य दर्पण विश्वनाथकृत– 7/1,2,3,4

श्रुतिकटुत्वादि पदांशों में ही रहते हैं, और अधिकांश दोष पदों में रहते हैं। किन्तु निरर्थकत्व, असमर्थत्व और च्युत–संस्कारत्व – ये तीन दोष केवल पदों में ही रहते हैं, पदांशों में नहीं।

साहित्यदर्पण के अष्टम परिच्छेद में गुणों का वर्णन करते हुए विश्वनाथ कहते हैं कि–

देह में आत्मा के समान काव्य में अंगित्व अर्थात् प्रधानता को प्राप्त जो रस है उसके धर्म (माधुर्यादिक) उसी प्रकार गुण कहलाते हैं जैसे आत्मा के शौर्य आदि को गुण कहा जाता हैं ये गुण माधुर्य, ओज तथा प्रसाद – इन तीनों भेदों में विभक्त हैं।[1] *इन तीनों गुणों के लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार वर्णित हैं–*

माधुर्य

चित्त का द्रुतिस्वरूप आह्लाद– जिसमें अन्तःकरण द्रुत हो जाए ऐसा आनन्द विशेष– माधुर्य कहलाता है। माधुर्य का विषय बताते हुए कहते हैं कि संभोग शृङ्गार, करुण, विप्रलम्भ शृङ्गार और शान्त रसों मे क्रमशः बढ़ा हुआ रहता है माधुर्य। शान्त रस में सबसे अधिक माधुर्य होता है। ट, ठ, ड, ढ से भिन्न वर्ण, आदि में वर्गों के अन्तिम वर्णों (ञ, म, ङ, ण, न) से युक्त होने पर– अर्थात् अपने पूर्व अपने वर्ग के पञ्चम अक्षर से संयुक्त होने पर माधुर्य के व्यञ्जक होते हैं। इसी प्रकार लघु 'र' और 'ण' भी माधुर्य के व्यंजक वर्ण हैं। एवम् अवृत्ति (समास रहित) अथवा अल्पवृत्ति (छोटे समासों वाली) मधुर रचना भी मार्धुय की व्यंजक होती है।[2]

ओज

चित्त का विस्तार स्वरूप दीप्तत्व ओज कहलाता है। वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में क्रमशः इसकी अधिकता होती है। वर्गों के पहले अक्षर के साथ मिला हुआ इसी वर्ग

---

1 *"रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा।*
गुणाः माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। साहित्य दर्पण– 8/1

2 *चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।*
संभोगेकरुणेविप्रलम्भे शान्तेऽधिकंक्रमात्।।8/2
मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्ताष्टठडढान्विना।
रणौ लघू च तद्व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गता।।8/3
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा।।8/4

का दूसरा अक्षर तथा तीसरे अक्षर के साथ मिला हुआ उसी वर्ग का अगला चौथा अक्षर तथा ऊपर या नीचे अथवा दोनों ओर रेफ़ से युक्त अक्षर एवं ट ठ ड ढ श और ष– ये सब ओज के व्यंजक होते हैं। इसी प्रकार लम्बे–लम्बे समासों वाली उद्धत रचना भी ओज का व्यंजन करती है।[1]

प्रसाद

जैसे सूखे ईंधन में अग्नि झट से व्याप्त हो जाती है, उसी प्रकार जो गुण चित्त में तुरन्त व्याप्त हो जाए उसे 'प्रसाद' कहते हैं। यह गुण समस्त रसों और सम्पूर्ण रचनाओं में रह सकता है। जिन शब्दों को सुनते ही उनका अर्थ प्रतीत हो जाए, ऐसे सरल और सुबोध पद प्रसाद के व्यंजक होते है।[2]

साहित्य दर्पणानुसार रीति निरूपण

पदों के मेल या संगठन को 'रीति' कहते हैं। वह अंगसंस्थान की तरह मानी जाती है। जैसे मनुष्यों के देह का संगठन होता है उसी प्रकार काव्यों के देहस्वरूप शब्दों और अर्थों का भी संगठन होता है। इसी संगठन को रीति कहते हैं। यह काव्य के आत्मभूत रस, भाव आदि की उपकारक होती है। जिस प्रकार पुरुष या स्त्री की शरीर रचना देखने से सुकुमारता, मधुरता अथवा क्रूरता कठिनता आदि उसके गुणों का ज्ञान होता है और उससे उस देहधारी की विशेषता का बोध होता है; इसी प्रकार काव्य में भी रचना से माधुर्य आदि गुणों के व्यंजन के द्वारा रसों का उपकार (उत्कर्ष) होता है।

---

1 *ओजश्चित्तस्य विस्ताररुपं दीप्तत्वमुच्यते।।8/4*
वीर वीभत्स रौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।
वर्गस्याद्य तृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ।।8/5
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफाष्टठडढै सह।
शकारश्च षकारश्च तस्यव्यंजकतां गताः।।8/6
तथासमासबहुला घटनौद्धत्यशालिनी।।8/7 साहित्य दर्पण– 8/4, 5, 6,7

2 *चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।।8/7*
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।
शब्दास्तद्व्यंजका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः।। 8/8 साहित्य दर्पण–8/ 7,8

वह रीति चार प्रकार की होती है– वैदर्भी गौड़ी, पाञ्चाली और लाटी। इनमें से माधुर्य व्यंजक वर्णों के द्वारा की हुई समास रहित अथवा छोटे–छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी रीति कहते हैं।

ओज को प्रकाशित करने वाले कठिन वर्णों से बनाए हुए अधिक समासों से युक्त उद्‌भटबन्ध को गौडी रीति कहते हैं।

इन दोनों रीतियों के जो शेष वर्ण हैं अर्थात् जो वर्ण न माधुर्य के व्यंजक हैं और न ओज के, उनसे जो रचना की जाए और जिसमें पाँच छः पदों तक का समास हो, वह रीति पाञ्चाली कहलाती है।

वैदर्मी और पाञ्चली– इन दोनों के मध्य की अर्थात् दोनों के लक्षणों से कुछ कुछ युक्त रीति को लाटी कहते हैं।[1]

काव्य प्रकाशानुसार

गुण

आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान (काव्य के आत्मभूत) प्रधान रस के जो अपरिहार्य तथा उत्कर्षाधायक धर्म हैं, वे गुण कहलाते हैं।[2]

अलंकार

जो काव्य में विद्यमान उस अंगीरस को (शब्द तथा अर्थ रूप) अंगों के द्वारा (नियमेन अथवा सर्वथा नहीं) कभी कभी उपकृत (उत्कर्षयुक्त) करते हैं, वे अनुप्रास और उपमा आदि (शब्दालंकार तथा अर्थालंकार शरीर के शोभाधान द्वारा परम्परया शरीरी

---

1 *पद संघटना रीतिरङ्गसंस्थानविशेषवत्।*
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।।9/1
वैदर्भी चाथ गौड़ी च पाञ्चाली लाटिका तथा।
माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।।9/2
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।
ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः।। 9/3
समास बहुला गौड़ी वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।
समस्त पञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिकामता।।9/4
लाटी तु रीतिवैदर्भी पाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता।। 9/5 साहित्य दर्पण–9/1,2,3,4,5

2 *ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।*
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।। काव्य प्रकाश–मम्मटकृत–8/66

आत्मा के उत्कर्षजनक) हार आदि (दैहिक अलंकारों) के समान (काव्य के) अलंकार होते हैं।[1]

गुणों के भेद

वे गुण 1. माधुर्य, 2. ओज तथा प्रसाद नामक तीन ही होते हैं, (वामन के अभिप्रेत) दस गुण नहीं हैं।

माधुर्य– *चित्त के द्रवी भाव का कारण और शृङ्गार में रहने वाला जो आह्लादस्वरूपत्व है, वह माधुर्य नामक गुण कहलाता है। यह माधुर्य गुण सामान्यतः सम्भोग शृङ्गार में रहता है, परन्तु करुण विप्रलम्भ शृङ्गार तथा शान्त रस में वहउत्तरोत्तर अधिक चमत्कार जनक (अतिशयान्वित) होता है।*

ओज– *वीर रस में रहने वाली (आत्मा अर्थात्) चित्त के विस्तार की हेतुभूत दीप्ति ओज कहलाती है। यह ओज सामान्यतः वीर रस में रहता है परन्तु वीभत्स तथा रौद्र रसों में क्रमशः इसका आधिक्य (विशेष चमत्कार जनकत्व) रहता है।*

प्रसाद– *सूखे ईन्धन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ वस्त्र में जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्य हो जाता है। वह सर्वत्र (सब रसों में) रहने वाला प्रसाद गुण कहलाता है।*

यद्यपि मुख्य रूप से गुण रस के धर्म हैं, परन्तु (उपचार से) गौणी वृत्ति से शब्द और अर्थ में भी उनकी स्थिति मानी जाती है।[2]

---

1 *उपकुर्वन्ति ते सन्तं ये अङ्गद्वारेण जातुचित्।*
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।। काव्य प्रकाश–मम्मट कृत–8/67

2 *माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश।*
आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्।।
करुणे विप्रलम्भेतच्छान्ते चातिशयान्वितम्।
दीप्त्यात्मविस्तृते हेतुरोजो वीररसस्थिति।।
वीभत्स रौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।
शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छ जलवत् सहसैव यः।।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः।
गुणवृत्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता।। काव्य प्रकाश 8/68, 69, 70, 71

अग्निपुराणानुसार रीतिनिरूपणम्

अग्नि देवता ने कहा है कि वाग्विद्या (Art of Speech) का पूर्ण ज्ञान कराने में रीति का स्थान निर्विवाद है। इसके पाञ्चाली, गौडी, वैदर्भी और लाटी चार भेद हैं।[1]

पाञ्चली रीति में छोटे–छोटे विग्रह (समास) होने चाहिएँ और वह कोमल तथा अलंकृत भाषा से संयुक्त होनी चाहिये और गौड़ी रीति में लम्बे–लम्बे समास हों, संदर्भ अनवस्थित (क्षीणसम्बन्ध) हों।[2]

वैदर्भी रीति में न तो अधिक अलंकृत भाषा का प्रयोग हो और न अलंकृत प्रयोग से वह सर्वथा हीन ही हो। इसमें अति कोमल शब्दावली का प्रयोग न हो और यह समास से भी रहित होनी चाहिए।[3]

लाटी रीति में वाक्य सीधे और सरल होने चाहिएँ। जबकि समास अत्यन्त स्फुट न हों। भाषा का अनावश्यक अलंकरण इसमें नहीं होना चाहिए।[4]

आचार्य कालिका प्रसाद शुक्ल कृत प्रस्तुत श्रीराधाचरित महाकाव्यम् में यदि हम उपर्युक्त गुण दोषादिकों का विचार करें तो हम देखेंगे कि इस महाकाव्य में कोई भी दोष नहीं मिलेगा। जहाँ शान्त रस पाया जाता है वहाँ माधुर्य गुण है जैसे रासलीला प्रसंग में शान्त रस पुष्ट हुआ है अन्यत्र प्रसाद गुण व्याप्त है तथा वैदर्भी रीति अपनाई गई है जिसमें माधुर्य व्यंजक वर्णों के द्वारा समास रहित अथवा छोटे–छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना की गई है।

---

1 वाग्विद्या संप्रतिज्ञाने रीतिः सापि चतुर्विधा।
पाञ्चाली गौड़देशीया वैदर्भीलाटजा तथा।। अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग 4/1

2 उपचारयुता मृद्वी पांचाली ह्रस्व विग्रहा।
अनवस्थित सन्दर्भा गौडीया दीर्घ विग्रहा।। अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग–4/2

3 उपचारैर्न बहुभिरुपचारैर्विवर्जिता।
नातिकोमल सन्दर्भा वैदर्भी मुक्त विग्रहा।।अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग –4/3

4 'लटीया स्फुट सन्दर्भा नातिविस्फुट विग्रहा
परित्यक्ताऽभिभूयोऽपि उपचारैरुदाहृता।।अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग–4/4

श्री राधाचरित महाकाव्यम् में भाषा लालित्य

ललित लीलावचन बोलती हुई बरसाने की व्रजाङ्गनाएँ तथा नन्दगाँव के ग्वाले वसन्त में होलिकोत्सव में विजय मनाते हैं।[1] गोप–गोपियों के होलिकोत्सव में परस्पर हास–परिहास पूर्ण वार्तालापों में भाषा–लालित्य दर्शनीय है जैसे गोपियाँ श्री कृष्ण के विषय में श्री राधा से कहती हैं कि–

अत्यन्त कोमल हाथों वाली तुम दण्ड धारण करने के कारण कठोर हाथों वाले उस श्री कृष्ण का आलिंगन कैसे करोगी? कुङ्कुम से लिप्त अपने शरीर को उसके धूलधूसरित शरीर से कैसे मलिन करोगी?[2]

तुम्हारे कपोलों और मस्तक पर कस्तूरी और चन्दन से सुन्दर कलापूर्ण ढंग से निर्मित पत्रों (शृङ्गार) को वह लम्पट बालक भी अपने गोबर की गन्ध से युक्त हाथों से मसल डालेगा।[3]

इस प्रकार व्रजांगनाओं के ललित भाषामय परिहास को सुनकर ग्वाले भी इस प्रकार कहते हैं कि–

व्रजाङ्नाओं के ललित पदयुक्त मनोहर परिहास को सुनकर नन्दगांव के युवक श्री कृष्ण के अनुपम यशोगान युक्त वचनों से उनका प्रत्युत्तर देते हैं।6/60

हे सखियो! कामदेव के भी सौन्दर्यमद को दूर कर देने वाला यह वही बालक है जिस नवमेघतुल्य कान्ति वाले घनश्याम को प्राप्त करने के लिए लक्ष्मी जी भी स्पृहा करती हैं। (6/61)

---

1 वरसानोर्व्रजललना ललितं लीलावचः प्रयुञ्जानाः।
नन्दग्रामाभीरा जयन्ति होलोत्सवैः सुरभौ।। श्रीराधा चरित महाकाव्यम्– 6/75

2 त्वं वा मृणालपाणिर्लगुडकरं तं कथं समाश्लिष्येः।
कुङ्कुमलिप्तशरीरं तदीयरजसा किं मलिनयेः।। श्री राधाचरिते महाकाव्यम्–6/58

3 मृगमदमलयज पत्रं कलया कलितं कपोलयोर्भाले।
गोमयगन्धिकराभ्यां लम्पट बालोऽपि मृदनीयात्।। श्रीराधा चरित महाकाव्यम् 6/59

हे युवतियो! सम्पूर्ण आनन्द का एकमात्र आश्रय, अपने नाम के अनुरूप गुणों वाला नन्दनीय नन्दग्राम देवराज इन्द्र के द्वारा भी कामना किये जाने योग्य होता है। (6/62)

माधव के मधुर वंशीरस का पान करती हुई सुराङ्गनाओं के लिये रमणीय नन्दनवन भी आनन्द प्रदान नहीं करता है। (6/63)

नन्दग्राम की धूलि ही चन्दन चूर्ण बन जाती है तथा गोबर चन्दनरस के समान हो जाता है। इन दोनों के तात्त्विक माहात्म्य को कोई–कोई विद्वान् पुरुष ही समझ पाते हैं। (6/64)

हे यौवन की मतवाली गोपाङ्गनाओ! अमृताञ्जन की श्लाका का प्रयोग करने वाली, कठोर हृदय वाली तुम कोमल हृदय वाले सहृदय माधव को भला कैसे जान सकती हो। (6/65)

गोपियों की चाटुकारिता करते हुए गोपबाल ललित पदावली में यों कहते हैं कि–

हे बालाओ! इसलिये अपने कपोलो का चुम्बन करने के लिए तथा अधररसपान करने के लिए हमें अनुमति प्रदान करो। हम तुम्हारे दास तुम्हारे चरणों में पड़ते हैं।[1] *(6/67)*

इसका समुचित उत्तर देती हुई गोपियाँ कहती हैं कि –

---

1 *ललनाललित पदावलि चारु नर्म निशम्य हि युवकवृन्दम्।*
प्रति विदधाति वचोभिर्निरुपम माधव यशः पुञ्जैः।।6/60।।
सख्यः सोऽयंबालो मर्दितमदन कमनीयता विमदः।
स्पृहयति कमला सततं नवनीरदकान्तये यस्मै।।6/61।।
नन्दग्रामो नन्द्यः सुरपतिनापि हि काम्यते युवतयः।
अन्वर्थतां गतोऽयं निरतिशयानन्दसन्दोहः।।6/62।।
नन्दनविपिनं रम्यं तनुते न मुदं निलिम्पवनितानाम्।
माधव मुरलीरसं मधुरं सततं पिबन्तीनाम्।।6/63।।
धूलिश्चन्दनचूर्णिर्मलयजरसतामुपैति गोमयं च।
ययोर्महिम्ना तत्त्वं विरला जानन्ति विद्वांसः।।6/64।।
आभीर वामनयना यौवनमत्ताः सुधाञ्जनशलाकाः।
हृदयकठोरा हृद्यं रसराजं कथं विद्यात।।6/65।।
"तस्मात् कपोलपालि चुम्बितमधरं पातुमनुजानीत।
वयमिह दासा बाला वोऽधुना पादेषु पतामः।।6/67।।

योनल (ज्वार, बाजारा, जौ आदि) खाने के कारण कठोर कृष्ण होठों वाले अरे धृष्टो! डण्डों का चुम्बन करो। अरे कामान्धो। लवली लताओं के मधुर रस का पान खदिर (खैर के वृक्ष) कभी नहीं कर सकते क्योंकि वे बहुत कठोर होते हैं।[1] (6/68)

इसके उत्तर में ग्वाले कहते हैं कि–

प्रसन्न नयनों वाले गोपबालक ढाल पर डण्डों का प्रहार सहन करते हुए भी इस प्रकार बोले कि हे आर्याओ। हमारे परम प्रणय को स्वीकार करो।[2] क्योंकि

तुम्हारे कठोर हृदय पर निश्चय ही हमारे कठोर हाथ विलसित हुए सुशोभित होने चाहिएँ। क्योंकि जो जिसके योग्य होता है उस योग्य को अपने योग्य के साथ संयोजित करते हुए सदा विद्वान् पुरुषों को देखा गया है। अर्थात् कठोर से कठोर का तथा कोमल से कोमल का मिलन होना चाहिए।[3]

इसके उत्तर में गोपियाँ कहती हैं कि–

हे ग्वालो! रस के अनभिज्ञ व्यक्ति मधुरासवपूर्ण घट को भी प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं जैसे कि वानर अदरक भक्षण में विपरीत गति वाले होते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।[4]

गोपियाँ कहती हैं कि हे हल चलाने वाले कृषको। पका हुआ विशाल बिल्व फल भी कौओं को आनन्द देने वाला नहीं होता। इसलिये कहते हैं कि पका भी बेल कौआ के किस काम'। वस्त्रों से ढका हुआ भी कुम्भ तुम मूर्खों को कैसे भ्रमित करता है।[5] इसके उत्तर में ग्वाले कहते हैं कि–

---

1 *"लगुडांश्चुम्बत धृष्टा योनल भक्षण कठोर कृष्णोष्ठाः।*
खदिराः पिबन्ति लवलीरसं मधुरं न कदापि कामान्धाः।।श्रीराधा चरिते – 6/68

2 *"स्मेराननननयनास्ते फलके यष्टिप्रहारमपितासाम्।*
सहमाना पुनरूचुः स्वीकुरुतार्याः परं प्रणयम्।।श्रीराधाचरित महाकाव्ये–6/69

3 *कराः कठोरा नूनं कठोरहृदये लसन्तु युष्माकम्।*
इष्टेनेष्टं विज्ञा नियोजयन्तः सदा दृष्टाः।।श्रीराधा चरित महाकाव्यम–6/70

4 *मधुरासवरसकुम्भं रसानभिज्ञा ग्रहीतुमपिनालम्।*
कपयो विरुद्धगतयो हन्त शृङ्गवेरकभक्षणे।।श्रीराधा चरित महाकाव्यम–6/71

5 *"परिणाहि पक्व बिल्वो वायस मोदाय कल्पते नैव।*
कुम्भोवसनै पिहितो भ्रामयति मूढान् कथं भवतः।।श्रीराधा चरित महाकाव्यम्–6/72

हे गोपाङ्गनाओ। अपने श्रेष्ठ अंगों पर उन्मत्त हुई आपके अधरों का मधुर रसपान करने में आपकी क्या हानि होती है– कुछ नहीं। क्या मधु के लोभी भँवरों को मालती लता कभी मधुपान करने से रोकती है अर्थात् कभी नहीं रोकती।[1]

इसके उत्तर में गोपियाँ कहती है कि–

अरे ग्वालो! मधुर रसपान करने के लिए मधुर मुख बनाकर आओ। मधुर द्राक्षासव (अंगूरों का रस) पीने के लिए चाँदी का प्याला होना चाहिये न कि मिट्टी का। इसी प्रकार मधुर अधर रसपान करने के लिए पीने वाले के मुख में भी तो माधुर्य होना चाहिए।[2] *(6/74)*

इस प्रकार होलिकोत्सव वर्णन के अवसर पर महाकवि ने गोप–गोपाङ्गनाओं के परस्पर हास–परिहास पूर्ण वार्तालाप में अत्यन्त मनोहर पद–लालित्य के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। ऐसा पदलालित्य श्री राधा कृष्ण के हास्य रस परिपाक के वर्णन में भी दृष्टिगोचर होता है उसके दर्शन हास्य रस परिपाक वाले प्रसंग में ही यथास्थान किये जा सकते हैं।

मुहावरे लोकोक्तियों का भी कवि ने खूब प्रयोग किया है। उनकी मुहावरे दार भाषा के नमूने दर्शनीय हैं। होलाकोत्सव में ग्वाले गोपियों से कहते हैं कि –

आपके कठोर हृदय पर निश्चय ही हमारे कठोर हाथ सुशोभित हो क्यों कि बुद्धिमान् लोग सदा ही योग्य के साथ योग्य को ही संयुक्त करते देखे जाते हैं।[3] *फिर गोपियाँ कहती हैं कि –*

---

1 *"मधुराधर रसपाने का वो हानिर्वराङ्गमत्तानाम्।*
किं मालती कदाचिन्मधुपान् वारयति मधुलुब्धान्।।श्रीराधा चरित महाकाव्यम्–6/73

2 *"मधुरं रसितुं लपनं निर्मायागच्छत लपनं मधुरम्।*
द्राक्षासारं पातुं राजतचषको न हि मृन्मयः।। श्रीराधा चरित महाकाव्यम्–6/74

3 *कराः कठोरा नूनं कठोर हृदये लसन्तु युष्माकम्।*
इष्टेनेष्टं विज्ञा नियोजयन्तः सदा दृष्टाः।। श्री राधा चरिते–6/70।।

हे ग्वालो! रसानभिज्ञ व्यक्ति मधुर रस से भरे हुए घट को भी ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं क्योंकि अदरक को खाने में बन्दर विपरीतागति का आश्रय लेते हैं अर्थात् बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।[1] *इस पर ग्वाले कहते हैं–*

अरीगोपाङ्गनाओ! श्रेष्ठ अंगों पर मतवाली आपकी मधुर–अधर रसपान में क्या हानि हो जाएगी। क्या कभी मालती मधु के लोभी भँवरों को मधुपान से रोकती है? अर्थात कभी नहीं।[2] *फिर गोपियाँ कहती हैं कि–*

अरे ग्वालो। मधुर रस पीने के लिए मधुर मुख बनाकर आओ, क्योंकि अंगूरों का रस पीने के लिए चाँदी का प्याला अपेक्षित होता है मिट्टी का पात्र नहीं।[3]

चन्द्रोदय के वर्णन में कवि कहता है कि–

वेदवाक्यों से आहुति देकर अग्नि को तृप्त करने वाले स्नान किये हुए भी पसीने से भरे हुए कुशल ब्रह्मचारियों को चन्द्रमा शीतल किरणों से पोंछ देता है। अहो! ईश्वर भी तपस्वियों की ही सेवा करता है।[4] *इस प्रकार के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।*

रास के प्रसंग में कवि कहता है कि–

वंशीध्वनि के रसास्वादन में लीन हुई कुछ व्रजाङ्गनाओं ने अपने पास सोए हुए कमनीय पतियों को भी चाटुतापूर्ण वचनों के साथ स्पर्श भी नहीं किया; क्योंकि निश्श्रेयस सभी जनों को अभीष्ट होता है।[5]

कवि की भाषा सुन्दर–सुन्दर छन्दों के प्रयोग के कारण गेयता के गुण से भी सम्पन्न है। महाकाव्य में प्रयुक्त शिखरिणी शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मालिनी जैसे

---

1 *मधुरासवरसकुम्भं रसानभिज्ञा ग्रहीतुमपि नालम्।*
कपयो विरुद्धगतयो हन्त श्रृङ्गवेरक भक्षणे।। श्रीराधा चरिते–6/71

2 *मधुराधर रसपाने का वो हानिर्वराङ्गमत्तानाम्।*
किं मालती कदाचिन् मधुपान् वारयति मधुलुब्धान्।। श्री राधा चरिते–6/73

3 *मधुरं रसितुं लपनं निर्मायागच्छत लपनं मधुरम्।*
द्राक्षासारं पातुं राजत चषको न हि मृन्मयः।। श्री राधा चरिते–6/74

4 *बटून् पटून् वेदपदाहुतानलान् कृताभिषेकानपि घर्मसंकुलान्।*
निशाकरः प्रोञ्छति शीतलैः करैस्तपस्विनः सेवत ईश्वरोऽप्यहो।।श्रीराधा चरिते–7/51

5 *वंशीसुधास्वादरताश्च काश्चित् पार्श्वे शयानानपि काम्यकान्तान्।*
न पस्पृशुश्चाटुशतैर्वधूट्यो निश्श्रेयसं सर्वजनैर्हिकाम्यम्।।श्रीराधा चरिते–9/65

गेय छन्द मधुर गेयता उत्पन्न कर देते हैं। इस गुण के उदाहरण तो गा कर ही दिये जा सकते हैं, लिखकर नहीं।

श्री राधाचरित महाकाव्य में मुहावरेदार भाषा के कुछ और उदाहरण इस प्रकार देखे जा सकते हैं।

तालाबों में ग्रीष्म ऋतु में कुमुद, कमल तथा शैवाल आदि सब कुछ पानी तक भी सूख जाते हैं। यह देखकर श्रेष्ठपक्षी भी उन तालाबों को छोड़कर वन में चले जाते हैं। क्योंकि श्रीहीन विबुधजनों को भी लोग त्याग देते हैं।[1]

वर्षा ऋतु के वर्णन के लोकोक्ति प्रयोग दर्शनीय हैं–

बगुलों की पंक्ति हर्षातिरेक से मधुर ध्वनियों के द्वारा मेघों का स्वागत करती है। तथा व्रजाङ्गनाएँ भी बड़ी उत्सुकतापूर्वक उन्हें देखती हैं; क्योंकि सत्कर्म करने वाले का सभी अभिनन्दन करते हैं।[2]

महाकाव्य के अन्तिम चरण में श्रीमद् भागवत कथा के प्रसंग में कवि द्वारा प्रयुक्त कोमलकान्त पदावली सम्पन्न भाषा सौष्ठव का एक सुन्दर नमूना इस प्रकार दर्शनीय है–

उस कथा वाचिका पण्डिता की कोमलकान्त पदावली सत्कवियों के भी शब्द विन्यास को; उसका कण्ठमाधुर्य वीणा की मधुर ध्वनि को तथा उसकी विषयविवेचना बड़े–बड़े पण्डितों को भी बलपूर्वक पछाड़ देती है तथा उन सब का अतिक्रमण करके सबसे आगे बढ़ जाती है।[3]

---

1 कासारे कुमुदसरोज शैवलानां।
वारीणामपि नितरां विलोक्य शोषम्।
कादम्बा विहगवरा वनं प्रयाताः।
श्री हीनं विबुधमपि त्यजन्ति लोकाः।। श्रीराधा चरित महाकाव्यम्–10/5

2 सोन्मादा गगनतले मुदा बलाका
प्रत्युद्गच्छति मधुरैः स्वनैः पयोदम्।
वीक्षन्ते व्रजवनिता कुतूहलाप्ताः
सत्कर्मा निखिल जनेन नन्द्यते हि।। श्रीराधा चरित महाकाव्यम–10/25

3 सा शब्दशय्या गलमाधुरी सा
विवेचना सा विषयस्य तस्याः।
वीणा स्वनं सत्कविशब्दशय्यां
बलादतिक्राम्यति पण्डितायाः।। श्री राधा चरित महाकाव्यम्–13/73

शैली

भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य की मिश्र शैली में वर्णित श्री राधाचरितमहाकाव्यम् की शैली प्रसाद गुणमयी वैदर्भी है इस काव्य के निर्माण में कवि ने कालिदास की ललित पदावली तथा भावों का अनुसरण बड़ी रोचकता के साथ किया है। साहित्य दर्पण के अनुसार जो काव्य के गुण दोषों का वर्णन किया गया है उनमें से प्रस्तुत महाकाव्य में माधुर्य एवं प्रसाद गुण दृष्टिगोचर होते हैं क्योंकि रासलीला वाले प्रसंग में शान्त रस का परिपाक पाया जाता है। तथा शान्त रस में माधुर्य गुण बढ़ा हुआ रहता है। जिसमें चित्त का द्रुति स्वरूप आह्लाद– जिसमें अन्तःकरण द्रुत हो जाए, ऐसा आनन्द विशेष–माधुर्य कहलाता है।

प्रसाद गुण वह होता है जो चित्त में सूखे ईंधन में अग्नि की भाँति तुरन्त व्याप्त हो जाए। जिन शब्दों को सुनते ही उनका अर्थ प्रतीत हो जाए ऐसे सरल और सुबोध पद प्रसाद गुण के व्यंजक माने जाते हैं। यह गुण समस्त रसों तथा समस्त रचनाओं में रह सकता है। श्री राधाचरित महाकाव्य में भी प्रसाद गुण सर्वत्र पाया जाता है। क्योंकि इस महाकाव्य की भाषा शैली अत्यन्त सरल सुबोध तथा कोमल कान्त पदावली से सम्पन्न है जो कि सुनने मात्र से ही चित्त में व्याप्त हो जाती है।

प्रस्तुत महाकाव्य में भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का अत्यन्त मनोहर एवं अद्भुत संगम देखने को मिलता है। जैसे प्रयागराज में गंगा यमुना सरस्वती की त्रिवेणी का संगम बनता है ठीक उसी प्रकार श्री राधाचरित महाकाव्यम् में भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य की त्रिवेणी का संगम बनता है। भक्ति की धारा तो इस महाकाव्य में आरम्भ से अन्त तक प्रवाहित हो रही है; जैसे हम देखते हैं कि प्रथम सर्ग में ही भक्ति का स्रोत फूट पड़ा है–

श्री राधा में भक्ति प्रदर्शन करता हुआ कवि कहता है कि हे राधे! तुम्हारे चरणकमलों के पराग में झुका हुआ मेरा सिर भँवरा बन जाए। जैसे मधु के लोभी भँवरे सुगन्ध के कारण कमल को नहीं छोड़ते, वैसे ही मेरा सिर जगत् का आश्रय होने के कारण तुम्हारे चरणों को कभी न छोड़े; अर्थात् दिन रात प्रणाम करता रहे। इसी प्रकार जैसे चकोर पक्षी पूर्णिमा के चन्द्रमा को निरन्तर श्रद्धापूर्वक निहारता है, वैसे ही

श्रद्धातिरेक से तथा सर्वकामप्रद होने के कारण मेरा चक्षु तुम्हारे मुख को निरन्तर देखता रहे, तुम्हारे दर्शन सदा करता रहे।[1]

भक्तिपूर्वक श्री राधा को प्रणाम करता हुआ कवि कहता है कि –

बिम्ब के फल के समान हैं अधर जिसके, कुटिल केशों से अलंकृत है मुख जिसका, तगड़ी समूह से कटिभाग की उत्कृष्ट शोभा है जिसकी, नूपुरों से अलंकृत हैं चरण जिसके, ऐसे स्वरूप वाली वृषभानु की ललाम पुत्री श्री राधा को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।[2]

इस प्रकार यह धारा निरन्तर प्रवाहित होती हुई त्रयोदश सर्ग के अन्त में समुद्र में जा मिलती है जहाँ कवि श्रीमद् भागवत कथा के प्रसंग में कहता है कि–

इस प्रकार यमुना के कमनीय किनारे पर निवास करते हुए मैंने कतिपय दिन व्यतीत किये और भगवान् श्री कृष्ण की भवतापहारिणी कथा सुनी तथा संसार के तापों से तप्त अपने जन्म को सुखी बनाया; यही भक्ति धारा का अन्तिम फल होता है।[3]

इसी भक्ति की धारा में ज्ञान की धारा आकर मिल जाती है जबकि विभिन्न स्थलों पर कवि अपने विविध शास्त्र ज्ञान का परिचय देता हुआ ज्ञान गंगा प्रवाहित करता है। जैसे व्याकरण, न्याय, वेदान्त, योग तथा साहित्य के सिद्धान्तों का ज्ञान भी कवि ने प्रदर्शित किया है। राधा कृष्ण का ऐक्यत्व, उनकी अभिन्नता को प्रतिपादित करने वाले उपनिषद् के दुरूह सिद्धान्तों को सरल शब्दों में व्यक्त कर कवि ने अपने वैदुष्य को प्रतिपादित किया है। नीति शास्त्र का ज्ञान ऐसे दिया है–

---

1 *राधे तवैव पदपद्मपरागपुञ्जे*
भृङ्गायतां शिर इदं विनतं मदीयम्।
राधे तवैव मुखपार्वणचन्द्रबिम्बे
ज्योत्सना प्रियो भवतु चक्षुरिदं मदीयम्।। श्रीराधा चरित महाकाव्ये–1/2

2 *बिम्बाधरां कुटिल कुन्तलभूषितास्यां*
काञ्चीकलापकमनीय कुमुद्वतीकाम्।
मञ्जीरमण्डित मनोहर पादपद्मां
भक्त्या नमामि वृषभानुसुतां ललामाम्।। श्री राधा चरिते–1/35

3 *इत्थं दिनानि कतिचिन्मयका निवासात्।*
संवाहितानि यमुनापुलिनेऽतिकान्ते।
आकर्णिता भगवतो मधुराश्च वाचो
नीताश्च जन्म सुखितां भवतापतप्तम्।। श्री राधा चरिते–13/69

जो चन्द्रमा रात्रि में गगन के मस्तक पर भी पैर रख कर चढ़ गया था, कमलों की शोभा को भी जिसने अचानक हर लिया था; वही यह चन्द्रमा अब विनाश को प्राप्त हो रहा है क्योंकि दूसरों का अपकार करने की नीति सदा अनर्थ करने वाली होती है।[1] *शकुनशास्त्रज्ञान का परिचय देता हुआ कवि कहता है कि–*

कान्ता जघन सदृश नारियल के वृक्ष अपने कन्धे पर मधुरासवपूर्णकुम्भसमान नारियल के फल रखकर श्री राधा के वृन्दावन विहार के समय माङ्गलिकता का विस्तार करते हैं। मधुरासव पूर्ण नारियल के फल ही जलपूर्ण कलश हैं। यात्रा के समय युवतियों के द्वारा ले जाए जाते हुए जल से भरे कलश के दर्शन करना मंगलकारी होता है। ऐसा शकुनशास्त्र कहता है।[2]

इसी प्रकार वैराग्य धारा के भी दर्शन किये जा सकते हैं जैसे कवि सांसारिक एवं स्वर्गिक भोगों को त्यागकर राधावन में जाना चाहता है–

जहाँ पक्षी भी 'राधा'– 'राधा' इस पद से अपने कण्ठ को पवित्र करते हुए अत्यन्त महान् इन्द्र पद की भी अभिलाषा नहीं करते हैं। पूर्णकाम देवता भी इच्छा मात्र से प्राप्त सकल वस्तुओं से सम्पन्न जिसकी सदा कामना करते हैं उस निरुपम राधा वन को क्या मैं कभी प्राप्त कर सकूँगा। कहने का भाव यह है कि कवि का मन संसार से विरक्त होकर राधावन की ओर आकर्षित हो रहा है।[3]

<u>संवाद</u>

महाकाव्य के पात्रों में जो परस्पर संवाद हैं वे भी अत्यन्त सरल एवं सुबोध हैं जैसे द्वादश सर्ग में श्री राधाकृष्ण का परिहासमय संवाद है, एकादश सर्ग में शबरियों

---

1 *गगन भालतले पदमार्पिपत् सरसिजश्रियमेकपदेऽहरत्।*
विधुरयं स विलोपमितोऽधुना निकृतिनीतिरनर्थकरी सदा।।श्रीराधा चरिते महाकाव्यम–3/45

2 *स्कन्धे निधाय मधुरासवपूर्णकुम्भान्।*
राजिर्वशा जघन सन्निभलाङ्गलीनाम्।
वृन्दाटवीविहरणे वृषभानुजायाः।
श्वश्श्रेयसं वितनुते वयसां विरावैः।।श्रीराधा चरितमहाकाव्यम्–1/61

3 *राधां तु यत्र सततं मृदुसंलपन्तो।*
वाञ्छन्ति नापि विहगाः पदवीं मघोनः।
यस्मै च भूति महते स्पृहयन्ति देवा
राधावनं तदतुलं नु कदा भजेयम्।। श्रीराधा चरित महाकाव्यम–1/22

का प्रेमोपालम्भ एवं श्री कृष्ण द्वारा समाधानमय संवाद है उनमें किसी प्रकार की दुरूहता नहीं है। जैसे श्री कृष्ण राधा के वचनों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि–

स्निग्धे त्वयोक्तं निखिलं सहिष्ये।

यतोऽङ्गनावामपादविमर्दे।

रजांसि भूयांसि मदीयदेहाच्।

चण्डातकैः स्युः परिमार्जितानि।। श्रीराधाचरित महाकाव्यम्–12/41

हे प्रिये! तुम्हारे द्वारा कहा हुआ सब कुछ सहन करुँगा क्योंकि उन स्त्रियों के बाएँ पैर के द्वारा विमर्दन में मेरे शरीर के बहुत से रजकण उनके घाघरों की हवा के द्वारा उड़ा दिये जाएँगे। कैसा विनोद पूर्ण उत्तर दिया गया है। जो बड़ा ही सरल सुबोध संवाद का एक नमूना है। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

शबरियों के प्रेमोपालम्भ का समाधानपूर्वक उत्तर देते हुए ही कृष्ण ने कहा–

सीता तदीयं हृदयं शबर्यः तस्या विवासः स्वविवास एव।

स्वं रक्षणीयं न हि रक्षणीयं, प्रजाहितं स्वामिभिरेव चिन्त्यम्।। श्रीराधा चरित महाकाव्ये–11/13

जब शबरियों ने रामावतार में सीता परित्याग के विषय में श्री कृष्ण को उपालम्भ दिया कि रामावतार में कठोर गर्भा, परम पावन तीर्थों से भी पावन जनकसुता जानकी को कपट पूर्वक घर से निकाल कर भी मर्यादा पुरुषोत्तम तुमको केवल यश ही प्राप्त हुआ; तो इसका समाधान करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि– हे शबरियो! सीता राम का हृदय थीं और उनका निर्वासन अपनी आत्मा का ही निर्वासन था। अपनी आत्मा की रक्षा हो या न हो, स्वामियों को प्रजाओं का हित ही चिन्तनीय होता है। उस निर्वासन का कारण प्रजाओं का हित ही था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत महाकाव्य के संवाद भी बड़े ही सरल सुबोध एवं सुगम हैं। कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री राधाचरित महाकाव्यम् का कला पक्ष भी हृदय पक्ष की भाँति अत्यन्त उत्कृष्ट, श्रेष्ठ एवं प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण सफल एवं सार्थक सिद्ध होता है। जो कि महाकवि की भी श्रेष्ठता को प्रमाणित करता है।

****